(२)

जीवनमणिको इसीलिए निस्सार समझकर,
फेंक दिया दुष्कर्म—गर्त्तमें जैसे पत्थर।

(३)

दुर्बल—मनमें जब कुविचारोंका रण मचता,
नहिं करनेके काम उन्हें तब करने लगता।
नीचवासनाओंकी आग धधकने लगती,
शीलादिक—शुभकर्म भस्म वह पलमें करती॥

(४)

धर्म—कर्मका मर्म कभी न विचारा मैंने,
पापोंका परिणाम कभी न संभारा मैंने।
किन्तु दिनोंदिन अधःपतित होकर अपनेको,
दिया पापके हाथ, कुगतिमें ले चलनेको॥

(५)

बगुलोंकैसा ढोंग बनाया मैंने बाहिर,
बतलाया अवतार धर्मका सबको जाहिर।
धर्म धुरीण समझ सब करते आदर मेरा,
पर है अतिशय पतित कलंकित जीवन मेरा॥

(६)

ललनाओंकी रूपराशि जब नजरों पड़ती,
हृदयसिन्धुको विचलित करके व्याकुल करती।
मुझे जान पड़ता है तब यह जीवन मेरा,
किसी महा प्रच्छन्न—शक्तिने आकर घेरा॥

(७)

मुझको उसने दुनियांसे बेकार बनाया,
तन मनकी सुधि भुला मोहमें मुझे फँसाया।
रो रो कर दिन रात अश्रुकी धार बहाता,
जीवनके उन बुरे दिनोंको अब पछताता॥

(८)

सरसों और सुमेरु—शैलमें अन्तर जितना,
आत्मतेजके सम्मुख इन्द्रिय बल है उतना।
तौभी उसने विजय प्राप्तकर मुझे गिराया,
विषय—पंकमे फँसा देख निजदास बनाया॥

(९)

भूखे, प्यासे, दुखी—जनोंपर तरस न खाया,
कभी न उनकी बुरीदशापर अश्रु बहाया।
किया न सच्चा प्रेम किसीसे, मानी हो—कर,
बना जातिका कण्टक मैं नर जीवन पा—कर॥

(१०)

हो मानव जीवनकी यदि कुछ कदर हृदयमें,
गिनते हो यदि सुन्दर सबसे इसे जगतमें,
तो न कभी प्रियपाठक! गन्दा इसे बनाना,
विषय—विषैले—विषधरसे मत कभी डसाना॥

(११)

स्वार्थवृत्तिसे मलिन हृदयको शुद्ध बनाकर,
प्रेम—देवके लिए उसे उपहार चढ़ाकर।

करना जग उपकार कभी मत पीछे हटना,
देकर भी निजप्राण कीर्त्तिको अचल करना ॥

(१२)

यदि तुम अपनी जन्मभूमिका दुःख हरोगे,
जीवमात्रसे, वन्धु समझकर प्रेम करोगे,
तो सारा संसार तुम्हारा दास बनेगा,
भारतभूषण कह करके सम्मान करेगा ।

कुमुद ।

श्रीमन्धरस्वामीके नाम खुली चिट्ठी ।

(लेखक—श्रीयुत वाड़ीलाल मोतीलाल साह,)

(४)

परमकृपालु—प्रभो !

यद्यपि आप विदेह क्षत्रमें विराजे हैं तथापि इस क्षेत्रकी ओर दृष्टि करना भी आपका कर्तव्य है । इस वातको याद करके यदि मैं कुछ लिखूं और उसमें जो इस सेवककी ओरसे कुछ अविनय हो, तो उसके लिए, हे प्रभो ! मुझे आप क्षमा करेंगे । क्योंकि इस सेवकका अभिप्राय शुद्ध है । हमारे जाति भाइयोंका हित हो, इसी लिये कुछ लिखनेमें आता है—अपने उद्गार आपके सामने निकालना पड़ते हैं ।

हे गुरो ! हमारी यह स्थिति क्यों हुई ? इसपर जब विचार करते हैं—सूक्ष्मतासे उसका अवलोकन करते हैं—तव हमें

ज्ञान पड़ता है कि हममें नैतिक वल नहीं—अपनी आत्म-शक्तिपर हमें विश्वास नहीं—हमारे हृदयमें पुरुषार्थ नहीं। हम वहुतसी वातोंके सम्वन्धमें यह जानते हैं कि सत्य क्या है, खास खास मित्रोंके साथ उसके सम्वन्धकी वातें भी करते हैं, उसे आलंकारिक भाषा द्वारा प्रगट करते हैं पर ठीक ठीक उसके स्वरूपके कहनेकी हममें हिम्मत नहीं—नैतिक वल नहीं। इसका कारण हमारे स्वार्थको छोड़कर और कुछ नहीं कहा जा सकता। हम स्वार्थी हैं, इसलिए हमारे स्वार्थमें वाधा आयगी, हम दूसरोंके अप्रीतिपात्र हो जायँगे, लोकप्रिय न वन सकेंगे, इस भयसे—इस कायरपनसे—हम अपने हृदयके भावोंको खुलासा कहनेमें हिचकते हैं। और हे नाथ! इसीसे आपके जैन शासनकी स्थिति आज डाँवाडोल हो रही है।

मनुष्य हृदयसे जिस वातको मानता है उसे उसी तरह यदि वह सर्व साधारणमें प्रगट किया करे तो उसके साथ वहुतसी वुराइयां निकल जायं, पर वहां हम चुप रह जाते हैं.

हम अपनी इस चुपकी द्वारा वहुत प्रकारकी वुराइयोंको उत्तेजन देते हैं। अमुक रिवाज खराव है ऐसा हम कहते हैं, उसके होनेवाले वुरे परिणामका अनुभव करते हैं, पर तव भी उस खराव रिवाजको नहीं छोड़ते। हमारा हृदय वैसा करनेसे हिचकिचाता है। क्योंकि हम रूढ़िके गुलाम हैं—सच्चे गुलाम हैं—वृटिश सरकारने गुलामीका धंधा वंद तो किया, पर रूढ़िके गुलामोंकी तो अव भी उतनी ही संख्या है। रूढ़िरूपी वादलका अन्धकार चारों ओर इतना फैल रहा है कि जिन्हें सूझता है, जो खोटे और खरेकी परीक्षा करनेकी अपनेमें शक्ति रखते हैं, वे भी अन्धे देख पड़ते हैं।

हे नाथ ! हम कर्मके सिद्धान्तको माननेवाले हैं । हम यह भी कहते हैं कि किया हुआ पुरुषार्थ कभी निष्फल नहीं जाता। पर जब आप हमारे कार्यपर नजर डालेंगे तब आपको जान पड़ेगा कि हम केवल अपने इसी जीवनके लिए जीते हैं । हमारा इसपर विश्वास जमा हुआ है कि यही जविन सब कुछ है । हम वे ही काम करते हैं जिनका फल तुरत हमें मिलता हो, लोग हमारी तारीफ करते हों । हम वे काम कभी नहीं करेंगे जिनसे सारे संसारका कल्याण हो; उस मार्गको कभी अंगीकार न करेंगे जिससे अपना और परायेका नित्य हित होता हो । आत्माको अमर माननेवालोंकी प्रवृत्ति ऐसी हुई जान पड़ती है मानो पुनर्जन्म हे ही नही ।

हे प्रभो ! अब हमारे पुनरुत्थानका एक ही मार्ग है । जिनका शरीर निर्बल है, जिनका मन निर्बल हैं, जो सत्यके लिये सत्यके किनारेपर खड़े नहीं रह सकते—जिनमें ऐसी हिम्मत नहीं है—हे दयाके समुद्र ! उन लोगोंसे जैनधर्मका उदय कभी नहीं हो सकता । जैनधर्म क्षत्रियोंका धर्म है—जैनधर्म हठीले क्षत्रियोंका धर्म है—जैनधर्म जीतनेवालोंका धर्म है, जैनधर्म सत्यके उपासक लोगोंका धर्म है, वह धर्म आज दो पैसेके लिए धर्मको बेचनेवालोंके हाथमें जा पड़ा है, वह धर्म आज लोकप्रियताके लिए सत्यके बेचनेवालोंके पंजेमें जा फँसा है, वह धर्म आज रूढ़िके गुलामोंके सिंकजेमें जकड़ा हुआ है, जिस धर्मके सत्य सिद्धान्तोंका सच्चा उपयोग बड़ी विरलता कहीं दीख पड़ता है । सत्यके उपासक—शिरके चले जानेपर भी सत्यको न छोड़नेवाले उपासक—गिने गिनाये मिलते हैं । इसी लिए आज हमारी यह

दशा हुई है। श्रावकोंमें किसी तरहका वाक हो तो उन्हें खुले दिलसे स्पष्ट उपदेश देनेवाले साधु कहां नजर आते हैं? और साधुओंमें दोष हो तो उन्हें उनकी गल्ती समझा कर मार्गपर लानेवाले श्रावक कहां हैं? इसी लिए तो आज हमारे समाजमे साधुओंके नामसे ढोंगी भी पूजे जाने लगे हैं। उनसे जैन-धर्मको हानि पहुंचनेपर भी कोई उनके विरुद्ध चर्चा नहीं करता। जिस समाजकी ऐसी स्थिति है, जिसमें नैतिक बल्की पूर्ण त्रूटि है, हे अनाथबन्धो! उसका उदय--पुनरुत्थान--किसतरह हो सक्ता है? साधुओंको सुधारो, श्रावकोंको सुधारो--सुधारो! सुधारो!! ऐसी चिल्लाहट तो खूब सुनाई देती है, पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि किसे कौन सुधारे? और वह किसतरह? हे प्रभो! आपने तो मौन धारण कर रक्खा है। क्या ऐसी स्थितिमें आपकी सला-हकी--आपके अमूल्य उपदेशकी--हमें जरूरत नहीं है? वास्तवमें जरूरत है। इसलिए हमें आप नैतिकबल प्रदान कीजिए, जिससे पहले हम अपनी जातिको सुधारें, हम अपने दुर्गुणोंके वश न हो-कर उनका दूर करना सीखें, हम किसीके स्नेहसे उनकीसी न कहकर जिसे हमारा अन्तरंग चाहे उसे करने लगे। जब हम ऐसा करना सीखेंगे तब नियमसे हमारा मनोबल बहुत बढ़ेगा--अवश्य हमारी आत्मिक शक्तियां खूब खिल उठेंगीं। हे गुरो! आपकी सहायतासे--आपकी कृपाभरी दृष्टिसे--हम अपनी जातिको सुधारकर अपने भाइयोंके सुधार करनेका उपाय करेंगे। हमारी जाति और हमारे भाई जब सुधर जायँगे तब हमारे साधु, भट्टारक आदिको तो सुधरना ही पड़ेगा। क्योंकि काल तो 'अपना' काम करता ही

चला जायगा। इसके बाद जो भविष्य आवेगा उसे तो आप अच्छी तरह जानते ही हो। किसी जाति या धर्मका उत्थान—उन्नति-होना हो, तो उस जाति और उस धर्मके लोगोंका चारित्र पहले सुध-रना ही चाहिए।

हे नाथ! केवल बाह्य क्रियाओंसे कोई धर्मात्मा नहीं कहा जा सकता। क्रियाओं—सूखी क्रियाओं—हृदयके प्रेम बिना की हुई क्रिया-ओं—से किसीके जीवनका उद्धार हो सकेगा इसपर हमारा हृदय गवाही नहीं देता और जो ऐसा मानत हैं उन्हें वह बाधा भी नहीं पहुँचाता। हमारे विश्वासके अनुसार तो चारित्र ही सर्वस्व है। उसका पालन ही मनुष्यके जीवनकी कसौटी है। आप हमसे बहुत दूर हैं तब भी हम बारंबार आपको याद करते हैं इसका कारण आपके गुण हैं—आपका उच्च चारित्र है। जिस मनुष्यमें उच्च चारित्र नहीं वह भले ही बड़ी बड़ी क्रियाओंको करे, बड़ी बड़ी मालाएं फेरे, पर हे प्रभो! वह आपकी दृष्टिमें किसी गिनतीमें गिनने लायक नहीं। मैं सब क्रियाओंका निषेध नहीं करता, पर इतना जरूर कहूंगा कि बिना चारित्रके की हुई क्रियाएं राखपर लीपनेके बराबर हैं। हे गुरो! ऐसे विचारोंके प्रगट करनेके लिए भी नैतिक बलकी जरूरत है। मेरे सम्बन्धमें लोग क्या विश्वास करेंगे? वे मुझे क्या कहेंगे? जबतक ऐसे दुर्बल विचार हृदयमें लहराते हैं तबतक सत्यका प्ररूपण कैसे किया जा सकता है? तबतक निडर होकर सत्य कैसे बोला जा सकता है?

हे नाथ! इस विषयका नैतिक बल हममें बहुत ही थोड़ा है।

उसे हमें प्रदान कीजिए—हमारे आत्माकी शक्तियोंको तेजस्वी बनाइए, जिससे हम अपने अन्तःकरणको ठीक जचनेवाले सत्यका प्रकाश कर आपकी सेवा कर सकें। हे प्रभो! संभव है ये विचार किसीके विरुद्ध हों, तब भी किसी प्रकारकी हानि नहीं। क्योंकि प्रत्येक मनुष्यकी बुद्धिमें भेद होना संभव है। ऐसे विचार बहुतसे मनुष्योंके होते हैं, पर दूसरोंके सामने कहनेकी उनकी हिम्मत नहीं होती। इतना ही नहीं किन्तु जब कोई ऐसे विचारोंको स्थूलरूपसे प्रगट करता है तब हृदयसे उन्हें सत्य मानते हुए भी बाहिरसे उन विचारोंकी वे निन्दा करने लगते हैं। हे नाथ! ऐसे अन्तःकरणके चोर मनुष्य आपके जैनशासनमें बहुत हैं। ऐसे अन्तःकरणके बेचनेवालोंकी संख्या कुछ कम नहीं है। यह दोष पढ़े और अनपढ़ दोनोंमें है। जो अनपढ़ हैं उन्हें तो कहनेकी कुछ जरूरत नहीं। पर जो दीपक लेकर कुएमें पड़ते हैं, वे बेचारे विशेष दयाके पात्र हैं। इसलिए—हे अनाथबन्धो! उनकी मददके लिए दौड़िए और उनके हृदयमें जो सत्यकी चिनगारी है उसे प्रज्वलित कीजिए। वह चिनगारी बुझजानेवाली तो नहीं है, पर उसके अनुकूल संयोग न मिलनेसे बहुत समयसे उसपर पटल आजमा हैं। हम उन्हें हटाकर सत्यको जाहिर कर सकें ऐसी हिम्मत हमें, हमारे भाइयोंको और हमारे गुरुओंको प्रदान कीजिए। हम अपनी भूलोंको सुधार सकें और अपने उदय—उत्थान—का मार्ग ग्रहण कर सकें ऐसा बल हमें दीजिए। यह आपसे प्रार्थना है।

जैनसमाज और मुनि हर्षकीर्ति ।

जैनसमाजकी भी यदि हम अभागे समाजमें गिनती करें तो कुछ अत्युक्ति न होगी । वह विद्यासे अभागा है, धनसे अभागा है, कर्तव्यशील मनुष्योंसे अभागा है और सबसे बड़ा अभागापन उसमें यह है कि जिनके ऊपर उसकी उन्नतिका भार सौंपा गया है, जिनके जीवनका उद्देश्य—कर्त्तव्य—उसे सब तरह यशोभागी बनानेका है, वे ही आज उसे नीचेकी ओर ले जा रहे हैं—उसे चारों ओरसे चूस चूस कर दुर्बल और निकम्मा बना रहे हैं । खेद इस बातका है कि जब भी उसकी आँखें नहीं खुलती हैं । वह उल्टा उन लोगोंकी चुंगलमें फँसता जाता है । प्रति दिन हम ऐसे हाल पढ़ते हैं, तब भी अपनी रक्षा करना हमें नहीं सूझता । नहीं जान पड़ता कब हमारे हृदयपर ज्ञानका प्रकाश पड़ेगा और उसके द्वारा हम अपनी बुराई भलाईको जान कर अपनी रक्षा करना सीख सकेंगे ?

जिन लोगोंका हमने ऊपर उल्लेख किया है, वैसे ही एक महात्माका परिचय हम आज इस लेखमें अपने विज्ञ पाठकोंको कराते हैं । शीर्षकमें जिस व्यक्तिका नाम है, उनसे जैनसमाज परिचित है और उनके कर्त्तव्योंसे भी वह अनभिज्ञ नहीं है । क्योंकि लगभग बारह वर्ष पहले जैनपत्रोंमें आपके विषयमें बहुत आन्दोलन हो चुका है । हमें इस समय आपके विषयमें लिखनेकी इसलिए आवश्यकता पड़ी कि पहले आपके विषयकी जितनी बातें ज्ञात हुई थीं वे सब सुनी सुनाई थीं । पर इस वक्त जितनी बातें हम लिखेंगे वे प्रायः हमारी देखी हुई हैं ।

हर्पकीर्तिजी अपनेको मुनि—जैनसाधु—कहते हैं। वे कहीं पत्र वगैरह भेजते हैं तो उसमें अपना मुनिशब्दसे उल्लेख करते हैं। हम इस विषयकी यहां मीमांसा करना उचित समझते हैं कि, जैन शास्त्रोंमें मुनियोंके क्या लक्षण बतलाये हैं और वे उक्त मुनिजीमें हैं या नहीं ?

जैनशास्त्रोंमें मुनिका स्वरूप सामान्यतासे इस प्रकार लिखा है—

विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥

अर्थात्—जिसकी इच्छा विषयोंमे नष्ट होगई है, जो आरंभ रहित और अपरिग्रही—धन, धान्य, सुवर्ण, चांदी, आदि बाह्य परिग्रह और मिथ्यात्व, राग, द्वेष आदि अन्तरंग परिग्रहसे रहित—हो और जो स्वाध्याय, ध्यान और तपश्चर्यामें ही अपना समय बिताता हो, वही सच्चा तपस्वी मुनि—है।

अब देखना चाहिए कि ऊपर जिन जिन आवश्यक बातोंका साधुओंके लिए उल्लेख है वे हर्पकीर्त्तिजीमें हैं क्या ? यदि हों तब तो हमें उनसे कुछ विवाद नहीं। हम बड़ी प्रसन्नतासे उन्हें मानलेनेको तैयार हैं। और न हों तो मुनिजीको यह बतलाना चाहिए कि वे फिर अपनेको किस आधारपर मुनि सिद्ध करते हैं ? किस लिए वे जैनशास्त्रोंकी पवित्र आज्ञाकी हत्या करके जैन जातिको एक गहरे प्रपंचके गड्ढेमे डालते हैं ?

यदि मुनिजी हमारी बातोंका सप्रमाण उत्तर दें तो हम उसे सहर्ष अपने पत्रमें प्रकाशित करनेको तैयार हैं।

हम उनके श्रद्धालुओंसे भी अनुरोध करते हैं कि वे अपने गुरुजीसे हमारी बातोंका उत्तर दिलावें।

ऊपरके श्लोकमें साधुओंके लिए सबसे पहला विशेषण दिया गया है—विषयोंसे, न केवल विषयोंहीसे, किन्तु विषयोंकी आशासे भी रहित होना। अस्तु। विषयोंकी आशासे रहित होनेकी बातको तो छोड़िए। इतनी ऊँची वृत्तिका हो जाना तो बड़ा कठिन है। पहले मुनिजीमें यही बात देखिए कि उन्होंने विषयोंसे, विषयोपभोगकी सामग्रीसे, विषयोंकी लालसासे अपनेको कितना बचाया है—मुनि होकर भी वे संसारसे कितने उदासीन—विरक्त—हैं?

मुनिजीके पास उनके ही कथानुसार खूब धन है, रहनेके लिए एक सुन्दर मकान और हवा खोरी तथा चित्त बहलानेके लिए एक रमणीय बगीचा भी आपने अपने मकानके चारों ओर बना रक्खा है। गृहस्थके पास जितनी भोगोपभोगकी सामग्री होती हैं, जैसे—पलंग, वस्त्र, बिछोना, बर्तन, आदि वे सब मुनिजीके पास हैं। मुनिजीकी सामग्रीमें एक और बढ़कर बात है। वह यह कि गृहस्थ तो जैसी स्थितिका होता है उसीके अनुसार वह अपने लिए सामग्री जुटाता है। पर मुनिजी भिक्षुक होनेपर भी गृहस्थियोंसे कई अंशोंमें बढ़े चढ़े हैं। जिस जगह गृहस्थका एक साधारण बिछोनेसे काम चल जाता है वहां मुनिजी अपने सुकोमल शरीरको कष्ट न पहुंचानेके लिए उसे अच्छे रेशमी—मिसरू—के बिछोनेपर लिटाते हैं। जहां मुनि, ऐलक अथवा क्षुल्लकका एक साधारण लकड़ेके कमंडलुसे काम निकलता है वहां रूपकीर्तिजी सरीखे मुनियोंके लिए चांदी या पीतलके कमंडलुकी जरू-

रत रहती है। हजारों ऐसे गृहस्थ होंगे जिन्हें सोनेके लिए पलंग कभी नसीब नहीं हुआ होगा, पर मुनिजीके सोनेको तो पलंग जरूरी है। जिस समय मुनिजी बड़नगरसे रवाना हुए तब उनके साथ लगभग सतरा ट्रंक थे। मुनिजी चार महीने बड़नगरमें रहे उन्होंने कभी किसीको ट्रंक खोलकर नहीं बतलाये, पर हां यह जरूर कहते रहे कि मेरे पास बड़े बड़े अलभ्य ग्रन्थ हैं। न जाने उन बक्सोंमें ग्रन्थ ही थे या और कुछ। यह बात तो मुनिजी ही जान सकते हैं पर एक दिनकी विचित्र घटना इस विश्वासको झूठा साबित करती है कि उन सब ट्रंकोंमें अलभ्य ग्रंथ होंगे। जिस दिन मुनिजी अपने वतन के लिए रवाना हुए उस दिन स्टेशनपर आपका सामान पहुँचा। अनायास किसी धक्केकी चोटसे एक ट्रंक खुल पड़ा। उसमेंसे एकदम चिउड़ोंका ढेर गिर पड़ा। उपस्थित लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ कि मुनिजीके पास चिउड़ोंका क्या काम? उन्हें तो आहारके सिवा और कोई टाईम खानेका है ही नहीं।

इन सब बातोंके अतिरिक्त बहुतसे लोग उनपर एक भारी कलंग लगाते हैं, जो मनुष्य जातिके लिए एक भारी पाप समझा जाता है। पर हमारा उसपर विश्वास नहीं। हम यह जानते हैं कि विषयोंकी आग जब हृदयमें जलने लगती है तब मनुष्य सब कुछ भूल जाता है और नहीं करनेके काम करनेको उतारु हो जाता है। उस समय धर्म, लोकलज्जा, कुलशीलता आदि जितने पवित्र गुण हैं वे न जाने कहां विलीन हो जाते हैं। हम यह भी जानते हैं कि जिस आगने बड़े बड़े ऋषि, महात्माओंको पतित कर दिये थे, उसकी आंचके सामने कोई विरला ही भाग्यवान निकलेगा जो उससे अछूता रह सका हो। तब मुनिजी भी कभी

उससे विचलित हो जाँय तो कोई आश्चर्य नहीं। पर लोगोंके उक्त कथनपर विना किसी पुष्ट प्रमाणके विश्वास नहीं किया जा सकता। मुनिजीमें शास्त्र विरुद्ध कई क्रियाएं अवश्य हैं, पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे और बातोंमें भी उतने पतित हो गये होंगे। जो लोग मुनिजीपर परसंसर्गका दोष लगाते हैं वे अपने कथनकी पुष्टिमें कहते हैं कि भला जब वे साधु हैं तब उन्हें क्या जरूरत कि वे एक युवती आर्यिकाको अपने साथ रक्खें, जहां वे ठहरे वहां उसे ठहरावें और उसी एक मकानमें केवल आप दो ही जने रात भी बितावें? भले ही मुनिजी निर्दोष हों, तब भी उनका यह साथ लोगोंको बहुत खटकता है और सन्देह पैदा करता है। नीतिकारका जब सर्व साधारण लोगोंके लिए यह कहना है कि—

"तप्तांगारसमा नारी घृतकुंभसमः पुमान्।
तस्मात्पुरुषं च नारीं च नैकत्र स्थापयेद्बुधः॥

अर्थात्—स्त्री झलझलते अंगारके समान होती है और पुरुष घीके भरे हुए घड़ेकी तरह। इसलिए पुरुष और स्त्रीको एक स्थानपर कभी रहने देना उचित नहीं। मतलब यह है कि दोनों एक जगह रहकर अपनेको सुरक्षित रख सकें यह साधारण बात नहीं है।" तब आप स्वयं विचार सकते हैं कि एक जैनसाधुकी, जिसका दर्जा संसारके सब साधुओंसे स्तुत्य है, उक्त विषयमें कैसी प्रवृत्ति होनी चाहिए—आदि।

क्योंकि कलालकी दूकानपर दूध पीनेवाला भी शराबी समझा जाता है और यह भी तो उक्ति है कि " यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाकरणीयं नाचरणीयं । " इस लिए ऐसी ऐसी आत्मचरित्रके मलिन करनेवाली बातोंसे अपनी रक्षा कर जैनधर्मको भी आप पवित्र रक्खें तो अच्छा हो ।

यह तो हुई मुनिजीके विषयोंकी आशासे रहित होनेकी बात । अब रही यह कि वे निरारंभी और परिग्रह रहित हैं या नहीं ? सो दोनों बातें, धन, मकान, बाग बगीचोंके रखनेवालेके लिए बन नहीं सकती । तब यह सिद्ध हुआ कि मुनिजीमें मुनियोंकासा एक भी गुण नहीं है । फिर न जाने मुनिजी अपनेको मुनि किस जैनशास्त्रसे सिद्ध करते हैं ? और न जाने क्या समझकर उनके भक्त लोग उनपर इतने मुग्ध हैं ? इसका कोई गूढ़ कारण जरूर ही होना चाहिए ।

हमारी समझमें इसके दो कारण हो सकते हैं । एक तो यह कि मुनिजीने अपनेको मंत्र तंत्रका जाननेवाला प्रसिद्ध कर रक्खा है और हमारे समाजके उन निस्सन्तान धनिकों तथा स्त्रियोंको ऐसे पुरुषोंकी आवश्यकता बी है जो उनकी ऐसी अभिलाषा पूर्ण कर सके । ऐसे लोगोंकी आशाएं भले ही पूर्ण न हों पर जहां वे जरासा यह सुन पाते हैं कि अमुक मंत्र तंत्र जानता है तो फिर लीजिए वे उसपर जी जानसे न्यौछावर हो जाते हैं । उसकी तन मन धनसे सेवा करते हैं । जैसा मांत्रिक महाशय उन्हें नचाते हैं वैसे वे नाचते हैं। वे इस बातपर जरा भी नहीं विचारते कि सचमुच यह मंत्र तंत्र जानता है या नहीं ? ऐसी हालतमें मुनिजीपर मुग्ध होनेवालोंकी यदि हमारे

समाजमें अधिकायंत हो तो आश्चर्य क्या ? भला बाल बच्चों, धन-सम्पत्ति--की चाह किसे नहीं रहती ? मुनिजी जहां जाते हैं वहां मंत्रादिसे सम्बन्ध रखनेवाली क्रियाएं ही अधिक कराया करते हैं, जिससे लोगोंको यह विश्वास हो जाय कि मुनिजी मंत्र तंत्र खूब जानते हैं । हमें यद्यपि इसका ठीक ठीक परिचय नहीं कि मुनिजी मंत्रादि जानते हैं या नहीं, पर इस विषयमें हमें एक विश्वसनीय सज्जनसे जो हाल ज्ञात हुआ है उसे हम यहां लिखे देते हैं । उससे पाठक अनुमान कर सकेंगे कि मुनिजीका इस विषयमें कितना अधिकार है ।

मास्टर दीपचन्दजीसे जैनसमाज परिचित है । वे एक वक्त गुजरातमें दौरा करते दाहोद पहुँचे, जो कि हमारे मुनिजीका खास स्थान है । वहां किसी विषयको लेकर मुनिजीमें और उनमें बोल-चाल हो पड़ी । मुनिजी उनपर बड़े क्रोधित हुए । उन्होंने उन्हें यहांतक धमकी दी, कि मैं तुम्हें अभी इसका फल चखाए देता हूं । ऐसा कहकर वें उड़द मंत्रकर उनपर फैंकने लगे । पर मास्तर साहब उनकी धमकीमें न आए और न उनका कुछ बिगड़ा ही ।

दूसरा कारण उनके मान्य होनेमें यह जान पड़ता है--कि मुनिजी जहां जाते हैं वहां सबसे पहले इस विषयपर चर्चा उठाते हैं कि प्रतिमापर केसर लगानी चाहिए या नहीं ? फूल चढ़ाने चाहिए या नहीं ? शासन देवताओंको मानना चाहिये या नहीं ? आदि । यद्यपि इस विषयकी चर्चा करना बुरा नहीं है, पर मुनिजीका जो इस विषयके छेड़नेका ढंग है वह विलक्षण है । वे ऐसे विषयोंका

 देते हैं वह साथहीमें उन लोगोंकी निन्दा--बुराईको लिए

हुए होता है जो ऐसे विषयोंको नहीं माननेवाले हैं। उस समय आपके उपदेशका मुख्य उद्देश यह रहता है कि उन लोगोंपर अपने भक्तोंके हृदयमें घृणा—नफरत—पैदा हो।

जबसे जैनसमाजमें तेरापंथ और बीसपंथके निस्सार झगड़ेने जन्म लिया है तबसे एक तो उसकी जो सम्मिलित महती शक्ति थी वह छिन्न भिन्न हो गई। दूसरे मुनिजी सरीखे समाजद्रोहियोंकी बन पड़ी। हमें भी कई वक्त आपके उपदेशके सुननेका मौका मिला पर हमने आपके मुँहसे उक्त झगड़ों और परस्परमें ईर्षा द्वेषके बढ़ानेवाले विषयोंके सिवा कभी तात्विक, आध्यात्मिक अथवा जैन-जातिकी भलाईसे सम्बन्ध रखनेवाला उपदेश नहीं सुना। भले ही इन बातोंमें तथ्य हो, तब भी हम कहेंगे कि उनकी चर्चाके लिए यह समय उपयुक्त नहीं है। यदि मुनिजीने अपने आत्महितके लिए अथवा जातिकी भलाईके लिए संसारावस्थाको छोड़ी होती तो क्या जरूरत थी कि वे ऐसे निस्सार झगड़ोंको इतना महत्व देते? क्या उन्हें इसके सिवा और उपकारके कार्य नहीं जान पड़े? क्या एक ऊँचे पदपर अवस्थित होनेवालेको जातिमें इस प्रकार फूटका साम्राज्य बढ़ाना उचित है? खेद है कि परम पवित्र दयाधर्मके धारक होनेपर भी मुनि-जीके हृदयमें समाजकी दुर्दशापर कुछ दया नहीं। वे उल्टा उसे दुर्दशाका केन्द्र बना रहे हैं। क्या पंचमकालके साधुओंका यही कर्त्तव्य बाकी रह गया है? ऐसा कोई अभागा न होगा जो अपनी जातिकी दुर्दशा करना पसन्द करेगा। करना तो दूर रहा किन्तु ऐसी बुरी बातोंको हृदयमें भी न लायेगा। पर साधुत्वपनेका अभि

मानं करनेवाल हमारे मुनिजी ऐसी ही बातोंके फैलानेमें सिद्ध हस्त हैं। समाजके दुर्भाग्यपर दुःख होता है कि उसकी सन्तान ही आज उसे दुःखमें फँसा रही है।

मुनिजीकी ये बातें उनकी मान्यता होनेमें जादूका सा काम करती हैं। इसी लिए वे सर्व साधारणमें अपनेको वीसपंथका अवतार जाहिर करते हैं। हमारे भाई इतने भोले हैं कि वे अपने तथ अपनी जातिके हित अहितका कुछ विचार न कर जहा जिसने उनके पक्षका प्रतिपादन किया कि, फिर वह भले ही अपने स्वार्थके लिए जातिको धूलमें ही क्यों न मिला रहा हो, उसके दास बन जाते हैं और मुनिजी सरीखे गुरुओंके सूरिमंत्रसे कीलित होकर अपने भाइयोंको शत्रु समझने लगते हैं। जहांतक बन पड़ता है फिर वे उनसे किसी तरहकी बुराई करना बाकी रखना अपने कर्तव्यमें कमी समझते हैं। वे उन्हें कुत्ते बताते हैं, गुरुद्रोही कहते हैं, नास्तिक कहते हैं, कलियुगी कहते हैं, धर्मका नाश करनेवाला बतलाते हैं। थोड़ेमें यों कहिए कि संसारकी जितनी बुराईयां हैं वे सब उनमें कही जाती हैं। कौन जानता था कि जैनजातिके लिए ऐसा भी समय आयगा जिसमें भाईकी भाई दुर्दशा देखना पसन्द करेगा।

पर बात यह है कि हमारा अज्ञान ही हमें इन सब बातोंके करनेके लिए बाध्य करता है। हम अपनी मूर्खतासे धूर्त, मायाचारियोंकी बहकावटमें आकर अपने भाईयोंको अपना दुश्मन जानने लगते हैं। इसके लिए वादीभसिंहसूरिने बहुत ठीक लिखा है—
" मनुष्यकी बुद्धि स्वभावसे ही—विना किसी प्रयत्नके—बुरे कार्योंकी

और सम्मुख होती है और ऐसी हालतमें उसे यदि कोई वैसा ही उपदेश दाता मिल जाय तब फिर कहना ही क्या ? वह तो और भी अधिक बुरी ओर झुकेगी।" ठीक यही हालत आज हम लोगोंकी है। हम स्वयं अन्धे और इसपर हमारे उपदेश दाता, जिन्हें कि हम अपने गुरु समझकर मानते हैं, हमें अपने भाइयोंसे शत्रुता करनेका उपदेश देते हैं तब हमारी बुरी दशा हो, तो आश्चर्य क्या ? ऐसे लोग भी हमारे समाजमें गुरु कहलाते हैं। धन्य !

मुनिजीका गत चातुर्मास बड़नगरमें हुआ। आपकी कृपासे तेरा और बीसपंथके झगड़ेमें फिर नये जीवनका सञ्चार हुआ। बहुत दिनसे दबी हुई द्वेषाग्नि फिर धधकी। परस्परमें एककी एक निन्दा और बुराई करने लगा। महाराजके जहां पांव पड़ते हैं वहांके समाजकी यही दशा होती है। अपने स्वार्थके लिए दूसरेका बुरा करना इसे कहते हैं। महाराज तो चाहते हैं कि हमारी जैनसमाजमें मान्यता हो, पर जिस अवस्थासे वे अपनी मान्यता चाहते हैं उसके जब उनमें गुण नहीं, तब कौन उन्हें उस योग्य समझेगा ? भला, कभी बगुला यह चाहे कि मुझे लोग हंस समझें तो क्या कभी ऐसा हो सकता है? नहीं। ठीक उसी तरह जब हर्षकीर्तिजीमें जैन मुनियोंकेसे लक्षण नहीं तब सिवा अजान लोगोंके कोई जैनशास्त्रका जाननेवाला उन्हें मुनि—साधु—नहीं कह सकता। वे लोग कभी मुनिपदके अधिकारी नहीं बन सकते जो विषयोंके गुलाम हैं, जो पैसेके लिए द्वारद्वारके भिखारी हैं, जिन्हें अपने स्वार्थके लिए नानाप्रकारके छल कपट करना पड़ते हैं, जो साधु कहलाकर भी एक खासे गृहस्थ हैं, जिनके पास धन है, मकान है, और बाग बगीचे हैं।

शास्त्रोंमें जो मुनियोंके लक्षण बतलाए हैं उनसे तो हर्षकीर्तिजी मुन नहीं कहे जा सकते। क्योंकि न उनमें विषयोंकी कमी है, न वे अपरिग्रही और निरारंभी ही हैं। और जैनसाधुओंके लिए इनका होना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त मुनिजीके सम्बन्धकी कुछ और फुटकर बातें हैं। उनका भी हम दिग्दर्शन कराना उचित समझते हैं—

मुनिजी क्या लखपती हैं?—मुनिजी अपने शिष्योंको कहा करते हैं कि मेरे पास चौदह लाख रुपयेकी सम्पति है। मुनिजी न कोई व्यापार करते हैं और न उनके पास किसी तरहकी आमदनीकी ही सूरत है, तब आपके पास इतनी सम्पति कहांसे आई? और फिर आप तो साधु हैं आप इस धनका किस रीतिसे उपभोग करते हैं? क्या इस विषयका सन्तोषजनक उत्तर मुनिजी दे सकते हैं कि सचमुच उनके पास इतना धन है?

मुनिजीकी चालाकी—मुनिजीके पास कोई शंका समाधान करने को जाता है तो वे हर विषयमें शास्त्रोंकी दुहाई दिया करते हैं। पर इसमें वे एक बड़ी भारी चालाकी करते हैं—जिसका सर्व साधारण थाह नहीं पा सकते। वे बात बातमें शास्त्रप्रमाण तो दे डालते हैं, पर उनपर बिना देखे यह विश्वास कर लेना कि वह दिगम्बरऋषि प्रणीत है, गल्ती है। एक दिन उन्होंने दिगम्बर—शास्त्रका नामोल्लेख करके एक प्रमाण दिया था कि—

देवगुरुधम्मकज्जे, चूरिज्जइ चक्कवट्टिसेणम्मि।
जो णवि चूरइ साहू, अणंत संसारिओ होहि॥

इसका भाव यह है—देव गुरु और धर्मके लिए चक्रवर्त्तिकी सेना भी

नष्ट कर देनी चाहिए और जो साधु ऐसा नहीं करते वे अनन्त संसारी होते हैं। पर यह प्रमाण दिगम्बरधर्मशास्त्रका न होकर श्वेताम्बरीय भगवतीसूत्रका है।

इसी तरह वे अपने भोले भक्तोंको उपदेश देते हैं तब कहते हैं कि पुलाकजातिके मुनियोंके लिए वस्त्र छोड़नेकी कुछ आश्यकता नहीं है। वैसा ही वे शास्त्रप्रमाण भी सुना देते हैं। पर यह बात भी श्वेताम्बर धर्मके अनुसार है। दिगम्बर मुनियोंके लिए वस्त्रका छोड़ना सबसे पहला कहा गया है। वस्त्रके बिना छोड़े दिगम्बर धर्मग्रन्थोंके अनुसार वह कभी मुनि नहीं हो सकता।

एक दिन मुनिजी शास्त्र पढ़ रहे थे और प्रकरण श्राद्धका था। उस समय उनसे हमने पूछा कि—

हम—ब्राह्मणोंकी श्राद्ध पद्धतिमें और जैनधर्मकी श्राद्ध पद्धतिमें क्या अन्तर है?

मुनिजी—जैसा वे कौवोंका तर्पण करते हैं वैसा जैनधर्ममें नहीं है।

हम—मेरा मतलब इससे नहीं, किन्तु यह है कि जैसे वे लोग श्राद्धसे मृतपुरुषोंकी तृप्ति मानते हैं वैसा ही क्या जैनधर्मका भी कहना है?

मुनिजी—हां।

हम—पर हमने तो श्राद्धका तात्पर्य यह सुना है कि "श्रद्धया दीयते दानं श्राद्धमित्यभिधीयते"। इसके अतिरिक्त भावसंग्रह आदिमें श्राद्धसे मृतकोंकी तृप्ति मानना मिथ्यात्व बतलाया है। फिर आपका कहना तो इससे विपरीत है।

इसपर मुनिजी जरा जोरमें आकर बोले कि—कहीं भी श्राद्धका निषेध नहीं किया है। कहो, व्याकरण, न्याय, साहित्य, अलंकार, नाटक, चम्पू, काव्य, ज्योतिष, धर्मशास्त्र आदि किसमें श्राद्ध करना लिखा हुआ बतलाऊं।

इसपर हमें बड़ी दिल्लगी आई कि श्राद्ध एक आचारका विषय है। वह व्याकरण, न्याय, काव्य, नाटकादिमें कैसे मिल सकता है? हमें अत्यन्त व्यग्रता हुई। हम अपनी इस उत्कंठाको कि हरेक विषयोंके शास्त्रोंमें श्राद्धका विषय कैसे लिखा है, नहीं रोक सके। इसलिए हमें बाध्य होकर पूछना ही पड़ा—अच्छा बतलाइए तो किस नाटकमें श्राद्ध करना बतलाया है? इसपर मुनिजीने यह कह कर, कि देखो, जीवन्धरचरित्रमें लिखा है, झट एक श्लोक न जाने कहांका सुना दिया। जीवन्धरचरित्र और जीवन्धरचम्पू हमारे देखे हुए थे उनमें महाराजका सुनाया हुआ श्लोक हमारे पढ़नेमें नहीं आया था। तब हमें पता लगा कि महाराज लोगोंको किस तरह शास्त्रकी दुहाई देकर बहकाते हैं।

मुनिजी तेरापंथियोंके मनभावता उपदेश चाहें न दें, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे जैसे लोग देखते हैं वैसा ही उपदेश देते हैं। आपने बड़नगरमें एक सभा की थी, उसमें कोशिश करके ब्राह्मण पौराणिक पंडित अधिक बुलवाये गये थे। उपदेशका विषय वही झगड़ेकी जड़ केसर लगानी चाहिए, फूल चढ़ाने चाहिए—आदि था। जब आपका व्याख्यान पूर्ण हुआ तब अन्तमें सबके सन्तुष्ट करनेके लिए आप बोले—भला, यह कहांकी बात है कि संसारके सब मत बुरे और जैन धर्म ही सच्चा धर्म। ऐसा जो कुछ लोग कहते हैं वह

बिल्कुल झूठा है। जैनधर्ममें और वैष्णवधर्ममें केवल यही भेद है कि वैष्णव भाई, राज्यावस्थाको मानते हैं और जैनधर्मी वैराग्य अवस्थाको। बस, और सब एकहीसा है। पाठक! देखा मुनिजीका ज्ञान! इसीपर वे इस बातका दावा किया करते हैं कि हमसे जो चाहे वह शास्त्रार्थ कर ले। धन्य मुनिजी! यह साहस आपहीसे निर्भीक मनुष्य कर सकते हैं। पापभीरु मनुष्य तो ऐसा कहते कांप उठेगा। जैनधर्मका मर्म आपहीने तो जान पाया है। कृपानाथ! बतलाइए तो क्या जैनधर्म ईश्वरको सृष्टिकर्ता और व्यापक मानता है? क्या आपका ईश्वर भी अवतार धारण किया करता है? वेदों और मनुस्मृतियोंकी तरह—"न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।" आपके धर्म शास्त्रोंमें भी क्या ऐसा उपदेश दिया गया है? क्या यज्ञादिमें आपके यहां पशुओंकी बलि दी जाती है? क्या तत्वोंका विवेचन जैसा उनके यहां किया गया है वैसा ही आपके यहां भी है?

महाराज! जरा स्वार्थको छोड़िये। आप तो साधु हैं। यह छल-कपट आपको शोभा नहीं देता। आपका कर्तव्य तो दिनरात दूसरोंके उपकारके लिए ही होना चाहिए। बतलाइए तो आप लाखोंकी सम्पत्तिको क्या करेंगे? जाति अज्ञानके बोझेसे दबी जा रही है, उसकी सन्तान भूखों मर रही है, शिक्षाके लिए उसे दूसरोंका मुख देखना पड़ता है, गृहस्थ अपने खर्चेके बोझेसे दबे हुए हैं, इस लिए वे शिक्षाके लिए उपयुक्त पैसा खर्च नहीं कर सकते। फिर आप ही जातिके इस कष्टका अन्त क्यों नहीं कर देते? आपके आगे पीछे तो लुगाई, बालबच्चोंका पचड़ा भी नहीं है, जो आपके बाद वे उसके अधिकारी हो जायँगे और न उसे आप ही अपने साथ ले जायँगे,

तब मालिक होगी या तो सरकार या यो ही वह जमीनमें गड़ा रह जायगा। फिर उसे सुकृतमें ही क्यों नहीं लगा देते? जरा इस नीतिको तो विचारिए कि "**नादाने किन्तु दाने हि सतां तुष्यति मानसम्।**" अब मलिनता और संकीर्णता छोड़कर कुछ उदार बनिए और जैनधर्मके इस उद्देश्यको—**सत्वेषु मैत्री**—सफल कीजिए।

मुनिजी श्वेताम्बरी हैं या दिगम्बरी? मुनिजी प्रगटमें तो अपनेको दिगम्बरी बतलाते हैं, पर वास्तवमें वे दिगम्बरी हों इसमें हमें सन्देह है। उनकी प्रवृति ही हमारे सन्देहको बढ़ाती है। उनमें एक तो यह बात है कि वे अपने उपदेशमें श्वेताम्बरशास्त्रके अनुसार दिगम्बरोंमें भी मुनियोंको वस्त्र रखना सदोष नहीं है ऐसा प्रतिपादन करते हैं, वे देव, गुरु, धर्मके लिए साधुओंको चक्रवर्त्तिकी सेनाका चूर्ण करना बताते हैं जो दिगम्बरधर्मसे विपरीत है। यह तो हुई उनके उपदेश की बात। आपकी प्रवृत्ति देखिए तो उसमें भी ऐसी ही गड़बड़ है। गत भाद्रपदमें आप बड़नगर थे। वहां आप श्वेताम्बर मन्दिरमें दर्शन करनेको गये। वहां आपने कुछ रुपया भेंट चढ़ाये। इन बातोंसे हम आपको क्या समझें? श्वेतांबरी या दिगम्बरी? यदि इतनेपर भी आप अपनेको दिगम्बरी बतलावें तो आपका श्वेताम्बर मन्दिरोंमें जाना अवश्य किसी स्वार्थको लिए हुए होना चाहिए। भगवान् जाने ऐसा छल छिद्र आप किस लिए करते हैं?

मुनिजीके हृदयकी कलुषता—मुनि अवस्था ऊँची सीढ़ी है। वह इसलिए धारण की जाती है कि गृहस्थ अवस्थामें जो राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्षा, आग्रह, पक्षपात, आदि विकार आत्माको सदा मलीन किए रहते हैं उनसे मुक्ति पास कर आत्मा

शान्तिका केन्द्र और पवित्र बनें । बुरी वासनाओंसे उसका पिण्ड छूटे । ऊँचे पदपर चढ़कर भी यदि ये ही बातें हममें बनी रहें तो कहना चाहिए फिर हमारा वह प्रयास व्यर्थ है । उससे तो गृहस्थ अवस्था ही अच्छी है । क्योंकि छोटा होकर यदि छोटा काम करे तो वह उतना निन्दित नहीं कहा जा सकता जितना बड़ा होकर छोटा काम करनेसे निन्दाका पात्र बनना पड़ता है । हमारे मुनिजीमें यह बात नहीं है । वे पहुँचे तो हैं ऊँचे दर्जेपर, पर कर्तव्य उनका एक साधारण गृहस्थसे भी नीचा है । उनका हृदय इतना मलिन और पक्षपाती है कि जितना गृहस्थका भी न होगा ।

बड़नगरमें दिगम्बरोंके तीन मन्दिर हैं । दो बीसपंथीके और एक तेरापंथीका । मुनिजी तेरापंथियोंसे तो इतने जलेतन हैं कि उन्होंने श्वेताम्बरोंके मन्दिरमें दर्शन करनेको जाना बुरा न समझा और तेरापंथियों—दिगम्बरियों—के मन्दिरमें जाना उन्हें एक महापापका कार्य जान पड़ा, जो आप उनके सामनेसे होकर निकल गये पर भीतर न गये । जिसका हृदय इतना गन्दा है फिर भी वह अपनेको साधु कहे तो ऐसे साधुओंके लिए दूरहीसे अंजलि है । जो स्वयं राग, द्वेष, पक्षपातादिका गुञ्जन है, वह हमारा क्या उद्धार करेगा ? वह स्वयं तो पहले उनसे उद्धार पाले। अच्छा मुनिजी ! थोड़ी देरके लिए हम यही मानलें कि तेरापंथी आपका आदर सत्कार नहीं करते इसलिए आप उन्हें बुरा समझते हैं, पर यह तो कहिए कि भगवान्की प्रतिमाने आपका कौन भारी बिगाड़ किया था, जिससे उनका दर्शनतक आपने बुरा समझा ? साधुराज ! जरा हृदयको पवित्र बनाकर एकान्तमें शान्तिके साथ विचार तो कीजिए कि क्या

आपका यह उचित कर्त्तव्य है ? आपको तो राग-द्वेष रहित होना चाहिए था न ? और जब आप भी राग द्वेषके उपासक और हम भी वैसे ही तब आप और हममें अन्तर ही क्या रहेगा ? इन सब बातों-पर ध्यान दीजिए।

मुनिजीकी कषाएं—वैसे तो हमारे पाठक ऊपरकी बातोंसे ही इस बातका पता लगा सकेंगे कि मुनिजीकी कषाएं कितनी मन्द हैं ? हम यहांपर अपनी आखोंसे देखी हुई एक घटनाका उल्लेख करते हैं। उससे आप मुनिजीके मन्दकषायकी ओर भी अच्छी तरह जाँच कर सकेंगे।

गत आश्विनमें श्रीऋषभब्रह्मचर्याश्रमहस्तिनापुर बड़नगरमें आया था। मुनिजी भी तब वहीं थे। आश्रमके सञ्चालक श्रीयुत भगवानदीनजी, कुँवर दिग्विजयसिंहजी तथा मास्तर दर्यावसिंहजी आदिकी इच्छा मुनिजीसे मिलनेकी हुई। आप सब उनसे मिलनेको गये भी। मुनिजी उस समय उपदेश दे रहे थे। सब जाकर वहां बैठ गये। इतनेमें भगवानदीनजीकी नजर कुछ अश्लील तस्वीरोंपर ना पड़ी, जो वहां लगी हुई थीं। उन्होंने पूछा—ये तस्वीरें यहां किस लिए लगाई गई ? इनके देखनेसे तो चित्तमें विकार पैदा होता है। और फिर ये एक ऐसे स्थानपर लगाई गई हैं जहां धर्मका उपदेश हुआ करता है। इनका लगाना ठीक नहीं जान पड़ता।

इसपर मुनिजीने कहा—मैंने नहीं लगवाई हैं। जिसने लगवाई हों—उससे पूछिए।

भगवानदीनजीने कहा—मैं भी उसीसे पूछता हूं जिसने कि इन्हें लगवाई हैं।

इसपर एक श्रावक महाशय कुछ गर्मीमें आकर आड़ा टेढ़ा बोलने लगे। आखिर मुनिजीसे भी नहीं रहा गया। वे बोले कि अच्छा हमने ही ये तस्वीरें लगवाई हैं। कहिए आप क्या कहना चाहते हैं? जब कि समवशरणमें नाटकशाला, देवांगना आदि होती हैं तब यह स्थल भी तो समवसरणसा ही है। फिर यहांपर यदि ऐसी तस्वीरें रहें तो इसमें दोष क्या है? ऐसा कहकर आपने झटसे " **मानस्तंभा सरांसि** " आदि श्लोक बोल दिया। हम नहीं जानते कि उक्त श्लोकसे अश्लील तस्वीरोंका क्या सम्बन्ध था? पर मुनिजीका तो नियम है कि कोई बात हो, चाहे फिर वह प्रकरणसे सम्बन्ध रखती हो या न रखती हो, कुछ न कुछ बोल ही देना।

ये बातें हो रहीं थी कि इतनेमें एक विद्यार्थीने, जिन्हें कि मुनिजीकी प्राईवेट बातें विदित थीं, उठकर मुनिजीके सम्बन्धमें कुछ कहना आरंभ किया। उस समय उनकी गल्तीसे हो या किसी और अभिप्रायसे, उनके मुँहसे एक कठोर शब्द—अर्थात्—ये मुनिजी ढोंगी हैं, निकल गया। इसपर मुनिजीका मिजाज जैसा बिगड़ा है उसका उल्लेख करना हमारी लेखनीकी शक्तिसे बाहर है। केवल हम इतना बतलाए देते हैं कि उस समय मुनिजीका सारा शरीर क्रोधके आवेगसे थरथर कांप रहा था, उनका चेहरा लालसुर्ख पड़ गया था, उनकी आंखोंमें क्रोधकी आग बरस रही थी और उनके पवित्र श्रीमुखसे—"श्रावको! देखते क्या हो! मारो, मारो, इस मादरचोदको मारो!! पचास जूते मारो! निकाल दो, यहांसे जूते मारकर अभी निकाल दो!! इसकी कुछ परवा न करो कि कुछ खर्च पड़ेगा।

हजार रुपया मुझसे ले जाओ और उसे अपने कियेका मजा चखा दो। फिर होगा सो देखा जायगा।" ऐसी हालत लगभग दश पन्दरा मिनिटतक मुनिजीकी रहीं होगी। मुनिजीने स्वयं भी पींछी उठाकर उछल कूद तो बहुत की, पर न जाने फिर क्या समझकर वे बोलनेके सिवा और कुछ नहीं कर सके।

मुनिजीको किसने तो ढोंगी बताया, पर इसका प्रासाद—गालियां-कुँवर साहब, भगवानदीनजी, मास्तर दर्यावसिंहजीको भी अच्छी-तरह मिला। जिसे वे बहुत दिनोंतक याद रक्खेंगे कि हमें भी किसी दिगम्बरसाधुसे पाला पड़ा था। जो हो मुनिजीके विरुद्ध भी यदि किसीने कहा था तो भीं उन्हें तो इस श्लोकपर विचार कर—

" तृणं वा रत्नं रिपुरिव परममित्रमथवा
स्तुतिर्वा निन्दा वा मरणमथवा जीवितमथ।
सुखं वा दुःखं वा पितृवनमहोत्सौधमथवा
स्फुटं निर्ग्रन्थानां द्वयमपि समं शान्तमनसाम्॥"

शान्त रहना चाहिए था। क्योंकि दिगम्बर साधुओंका यही कर्त्तव्य है। मुनिजीकी यह सब लीला देखकर सब जने वापिस अपने स्थानपर लौट आये। गये तो इसलिए थे कि मुनिजीसे कोई नवीन तात्विक बात जानवेमें आवेगी, पर उसका जो परिणाम निकला उसे पाठक पढ़ चुके हैं।

मुनिजीके सम्बन्धमें हमने जो जो बातें जान पांई हैं उन्हें पाठकोंके सामने उपस्थित कीं। अब वे स्वयं समझलें कि मुनिजी वास्तवमें जैनमुनि हो सकते हैं या नहीं? यदि नहीं हो सकते तो जैन-समाजसे उनसे सावधान रहनेकी प्रार्थना करते हैं।

———

सम्पादकीय टिप्पणियां।

दक्षिण आफ्रिकाके दुखी भारतवासी।

भारतवर्ष जबसे गिरा तबसे सुख किसे कहते हैं इसका अनुभव उसे कभी नहीं हुआ। उसके निवासियोंको जैसी सुख शान्ति चाहिए कभी नहीं मिली। तब मिला क्या? यही कि वे जहां जायँ वहीं पद दलित हों, घृणाकी दृष्टिसे देखे जायँ, मनुष्य होते हुए भी वे मनुष्यतासे पतित समझे जायँ। यह माना जा सकता है कि जबसे भारत, बृटिशसरकारकी छत्रछायामें आया है तबसे कुछ ऐसे विप्लवोंका अन्त अवश्य हो गया है जो बात बातपर छोटे छोटे मामलोंको लेकर हो जाया करते थे। हां यह भी कहा जा सकता है कि उसे बृटिशसरकारकी कृपासे अपने उत्थानका मार्ग सूझ पड़ा है। भले ही बृटिशसरकारका भाव भारतके प्रति अच्छा हो, पर यह भी निस्सन्देह है कि—उसके कुछ अदूरदर्शी जातीय लोगोंके भारतवासियोंके प्रति अच्छे भाव नहीं हैं। वे अपने जातीय पक्षके कारण भारतीयप्रजाको बड़ी बुरी निगाहसे देखते हैं। वे एक ही बृटिश सरकारकी काली और गोरी प्रजामें भेदभावका प्रचार कर भारतीय प्रजाको सबकी दृष्टिसे गिरानेकी कोशिश करते हैं। पर मनुष्यत्व और ऊँची सभ्यताका गर्व करनेवालोंके लिए यह उचित नहीं। क्या अपनेको मनुष्य समजनेवालेके लिए यह उचित नहीं कि वे दूसरोंको भी अपनेसे समझें? जो एक कांटेके लग जानेसे जैसा अपनेमें दुःख अनुभव करते हैं वे दूसरोंके लिए भी ऐसा क्यों नहीं ख्याल करते हैं?

आज आफ्रिका निवासी भारतीयप्रजाको वहांकी गवर्नमेण्ट कितना

तंग कर रही है? वहांकी गोरी प्रजा उनसे किस तरहका घृणित और पाशविक अत्याचार करती है? तब भी उनकी सुनवाई नहीं की जाती। भारतीय प्रजा बहुत दुःख और कष्टसे अपना गुजारा कर रही है, यही कष्ट यदि वहांकी गोरी प्रजापर कभी पड़ा होता तो उसे कहीं इस बातका खयाल आया होता कि कष्टसे जीवन बिताना कैसा होता है? वहां की भारतीयप्रजाको अपना पेट भरना ही तो पहले मुश्किल पड़ रहा है, उस हालतमें उससे ४५) रु० वार्षिक करका लेना, न केवल उसीसे किन्तु उसके बालबच्चोंसे अर्थात् एक घरमें जितने मनुष्य हों उन प्रत्येकसे भी लेना, फूटपाथ पर उन्हें न चलने देना, उन्हें जबरन अपने स्वार्थके लिए बनाए कानूनके माननेको बाध्य करना, उनसे अगूंठेकी सही लेना, उनके विवाहको ना जायज समझना, उनपर पाशविक अत्याचार करना, यह सब अन्याय है! स्वार्थके लिए दूसरोंके गलेपर छुरी फेरना है! ब्रिटिशसरकारके शान्तिमय राज्यमें उसीकी प्रजापर इस प्रकारका जुल्म दक्षिणआफ्रिकाकी गोरी प्रजाकर रही है। उसकी कहीं सुनवाई नहीं। क्या यह उदासीनता—लापर्वाही—दो जातियोंके बीचमें मनोमालिन्य उत्पन्न न करेगी? करेगी। तब क्यों न वहां की प्रजापर दबाव डालकर भारतीयप्रजाकी रक्षा की जाती? हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारी न्यायशीला सरकार एकत्तीस करोड़ प्रजाकी गुहारपर ध्यान देकर बेचारी गरीब भारतीयप्रजाकी अवश्य रक्षा करेगी।

आफ्रिकाकी गोरी प्रजासे बेहद तंग आकर ही भारतीयप्रजाने सब कल कारखानोंका काम करना छोड़ दिया है। वह अपने साथ मनुष्यत्वका व्यवहार करनेको वहांकी सरकारसे प्रार्थना कर रही

है। पर उसकी सुनवाई न होकर वह उल्टी तंग की जा रही है। वह प्रति दिन कैदखानेमें भेजी जा रही है। उसके नेता मि० कर्म-वीर गांधी भारतीयप्रजाके नेता हैं, इसीलिए वे एक वर्षके लिए जेलमें ठूँस दिए गये। उनके साथ भारतके कुछ शुभचिन्तक अंगरेज भी बड़े घर भेजे गये हैं। यह समयकी बात है जो न्या-यके चाहनेवाले जेलमें ठूँसे जाँय। हड़ताल करनेके कारण हजारों भारतवासी बड़ी बड़ी तकलीफें उठा रहे हैं, खाने पहरनेतकको उनके पास नहीं है। भले ही भारतवासी बुरी हालतमें हों, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने भारतके पुराने गौरवको उज्वल कर दिया है—उसे चमका दिया है—। भारतवासियोंको अपने इन दूर देशीय भाइयोंका पूर्ण आदर करना चाहिए। उनकी इस आपत्तिमें उन्हें पूर्ण सहायता देनी चाहिए।

इस जगह हम अपने जैनीभाइयोंसे भी दो बातें कहना चाहते हैं—

आपके पवित्र धर्मशास्त्रोंमें लिखा है कि, "जीवमात्रपर प्रेम करो, उन्हें उनके दुःखोंमें सहायता दो, जहांतक तुमसे बन सके दूसरोंकी भलाईसे कभी मुहँ मत फेरो—आदि"। आज आपके लिए भी वैसा समय उपस्थित हुआ है। आपके देशवासी—आपके भाई—अपने देशके गौरवकी रक्षाके लिए कठिनसे कठिन दुःख भोग रहे हैं, दूसरों की गुलामी करते हैं, उन्हें, उनकी स्त्रियोंको, उनके बालबच्चोंको जो भयंकर यातनाएं भोगनी पड़ती हैं उसका अनुभव उन्हें ही होता है, तब भी वे अपने निष्क्रियप्रतिरोधके कठिन व्रतसे च्युत न होकर उसका बराबर पालन करते चले आ रहे हैं। आज वे बड़े कष्टमें हैं। देशके सब लोग उनकी सहायता कर रहे हैं। तुम भी उन्हें

सहायता दो, तुम्हारे यहां करुणा दानका बड़ा माहात्म्य है। आज तुम्हारे भाई उसीके लिए तरस रहे हैं। उनपर दया करो। तुमने मंदिरोंमें असंख्य रुपया लगाया, और लगाओगे, तब क्या तुम्हारा यह कर्त्तव्य नहीं है कि तुम दुखियोंका दुःख दूर करो ? है। तुम्हारे ऋषियोंने जगतके उपकारके लिए अपना जीवन दिया था, तब क्या तुम अपने भाइयोंकी रक्षा न करोगे ? करो, अवश्य करो !—याद रक्खो, तुम कर्म–सिद्धान्तके माननेवाले हो, इस लिए यदि तुम किसीकी सहायता न करोगे तो तुम्हीं सोचो कि तुम्हारे लिए कौन सहायता करेगा ? तुम दूसरोंके दुःखपर दो आंसू न बहा–ओगे तो दूसरा कौन तुम्हारे लिए आंसू बहायेगा ? यह निश्चय रक्खो कि काचमें जैसा मुहँ करके देखोगे उसका प्रतिबिम्ब भी वैसा ही पड़ेगा। तुम सार्वजनिक कामोंमें बहुत ही थोड़ा भाग लेते हो, पर ऐसा करना तुम्हारे दया धर्मके विरुद्ध है। जगतका भला करना ही तुम्हारा उद्देश्य होना चाहिए। हमें पूर्ण आशा है—हमारे जैनीभाई दक्षिणआफ्रिकाके दुःखी भारतवासियोंकी अवश्य सहायता करेंगे। सहायताका द्रव्य "जैनमित्रकार्यालय हीराबाग बम्बई ४" के पतेपर भेजना चाहिए।

महासभा और जैनगजट।

जैनगजट महासभाका मुखपत्र है। वह उसीके सहारेपर ही चलता है। यदि आज महासभा उसपरसे अपना हाथ खींचले तो वह आज ही बन्द हो जाय। पर आश्चर्य इस बातका है कि वह महासभाका पत्र होनेपर भी महासभाके कानूनको—नियमको–

नहीं मानता ! वह उसके नियमकी कदर नहीं करता। जब महासभाका अपने द्वारा पले पोषेपर ही शासन नहीं—वह उसे अपने कानूनका पाबन्द नहीं कर सकती—तब दूसरोंपर, जिससे कि जातीय सम्बन्धके सिवा उसका कोई खास सम्बन्ध नहीं है, वह अपना आधिपत्य कैसे कर सकती है ? जो स्वयं अपनी ही सन्तानको वश नहीं कर सकता उसके लिए दूसरोंपर अधिकार जमाना ठीक नहीं। इसका मतलब यह नहीं कि हम महासभाके नियमोंको माननेके लिए बाध्य नहीं। हम मानते हैं—उनका आदर करते हैं। पर उसे तो यही उचित है कि वह पहले अपने घरको सुधारे।

गत अधिवेशनमें महासभाने एक प्रस्ताव पास किया था। वह इस रूपमें है—" भारतवर्षीय दि० जैनमहासभा प्रस्ताव करती है कि जैन समाचारपत्रोंमे बिला जरूरत महज अपना राग द्वेष पोषनेके लिए आक्षेपके लेख न लिखे जावें और इस प्रस्तावकी नकल हर समाचार पत्रके सम्पादकके पास भेजी जावे।"

इस प्रस्तावको पास हुए अभी दो महीना भी नहीं हुए कि जैन गजटने फिर अपना राग आलापना शुरु कर दिया है। उसने अपने विरुद्ध पक्षवालोंको सप्तव्यसनसेवी बतलाया है, देहलीके झगड़ेको फिर उसने उत्तेजन दिया है। क्या इससे महासभाके प्रस्तावमें कुछ बाधा न आयगी ? यदि न आये तब तो ठीक ही है। अन्यथा उसका कर्तव्य है कि वह जैनगजटको इस अकर्त्तव्यसे रोक कर अपने प्रस्तावपर चलनेको बाध्य करे। ऐसा करनेपर ही महासभा अपने स्वत्त्वका अधिक प्रचार कर सकेगी।

वर्षसमाप्ति ।

सत्यवादीने बड़ी २ कठनाइयोंका साम्हना करके अपना पहला वर्ष समाप्त किया । उसके लिए ग्राहकोंको भी बड़ी तरद्दुद उठाना पड़ी । कितने सज्जनोंको तो इसके जीवनमें भी सन्देह हो गया था । लगातार एक नवीन मासिक पत्रका दो दो तीन महीने पीछे पछड़ जाना ऐसा सन्देह उत्पन्न करे तो इसमें कुछ आश्चर्य भी नहीं । इसके इतने पीछे पछड़ जानेका हेतु—अस्वस्थताके कारण सम्पादकका दो दो वक्त अपने गांव चले जाना, वहांपर विलम्ब हो जाना आदि था । और न कोई दूसरा सहायक ही था जो इसे चला लेता । इससे सब काम रुका पड़ा रहा । इसी दैवी—घटनाने सत्यवादीको ठीक समयपर अपना पैर आगे न बढ़ाने दिया । इसके लिए हम अपने प्रिय पाठकोंसे विनीत भावसे क्षमाकी प्रार्थना करते हैं । आशा है कि पाठक भी इस विलम्बके लिए क्षमा करके सत्यवादीसे विरक्त न होंगे ।

वर्षपरिवर्त्तन ।

सत्यवादीका वर्ष भाद्रपदसे आरंभ किया था । पर वह बड़ी कठिनतासे अपने वर्षको पौष तक पूरा कर सका । मासिक पत्रके लिए यह दुःखकी बात है । आगेके लिए हमारी इच्छा है कि सत्यवादी ठीक समयपर महीनेके महीने प्रकाशित हो जाया करे । जिससे पाठक भी उसके लेखोंको समयपर पढ़ सकें ।

ऐसी हालतमें अब यदि सत्यवादीका वर्ष पहलेकी तरह ही भाद्रपदसे आरंभ किया जाय तो उससे कुछ लाभ नहीं । प्रत्युत जो

उसे देखेगा, संभव है कि ऐसी हालतमें उसपर उसे विरक्ति हो। इसलिए हम दूसरा वर्ष जनवरी सन् १९१४ ई०से आरंभ करेंगे। और फिर जहांतक हमसे बन पड़ेगा ठीक समय उसे प्रकाशित कर दिया करेंगे। हमें आशा है कि हमारे पाठकोंको इस विचारसे उदासीनता न होकर सन्तोष होगा। वे अपने जातिसेवककी गतवर्षकी शिथिलतापर उदारता दिखलायँगे।

साहित्य-समालोचना।

उपदेशरत्नमाला—लेखिका—एक जैन महिला, प्रकाशक—कुमार देवेन्द्रप्रसादजी आरा। कीमत आठ आना। प्रकाशकसे प्राप्त।

जैन महिलाओंमें ज्ञानप्रचारके लिए बाबू देवेन्द्रप्रसादजी अच्छा प्रयत्न कर रहे हैं। आपका कार्य स्तुत्य है। कुछ दिन हुए आपके द्वारा स्त्रीसमाजके लिए "ऐतिहासिकस्त्रियां" नामकी पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उसीके लिऐ यह दूसरी पुस्तक है। उसमें केवल आदर्श स्त्रियोंके चरित लिखे गये थे। इसमें स्त्रियोंके लिए उपदेशोंका संग्रह किया गया है। पुस्तक दो खण्डोंमें समाप्त की गई है। पहले खण्डमें विद्या, प्रातःक्रिया, वस्त्रधारण, भगवद्भजन, भोजनशुद्धि, आदि विषयों द्वारा नैतिक, शारीरिक, और मानसिक बल बढ़ानेका उपदेश दिया गया है। दूसरे खण्डमें—पञ्चाणुव्रत, सप्ततत्व आदि धार्मिक विषय समझाये गये हैं।

पुस्तक व्यवहारिक और धार्मिक दृष्टिसे अच्छी बनी है। उपदेश संक्षिप्त हैं और अच्छे हैं। जैन महिलाएं इसके द्वारा अच्छा-

लाभ उठा सकेंगी। पुस्तककी छपाई वगैरह बहुत सुन्दर है। प्रकाशक महाशयको लेखिकाका नाम देना चाहिए था। उससे जैन महिलाओंकी अधिक ख्याति होती।

बालिकाविनय—स्त्रीसमाजके लिए उक्त प्रकाशककी यह तीसरी पुस्तक है। इसमें उपदेशी भजनोंका संग्रह है। इसकी लिखनेवाली भी एक जैन महिला है। पर इसमें कई भजन ऐसे हैं जिन्हें हमने बनारसमें आर्यसमाज—मन्दिरमें एक महिलाके मुँहसे भी सुने थे। जो हो, भजन शिक्षाप्रद और स्त्रियोपयोगी हैं। कीमत इसकी एक आना है।

यशोधरचरित्र—लेखक श्रीयुत हीराचन्द अमीचन्द शहा शोलापुर। कीमत आठ आना। मिलनेका पता पुस्तकपर नहीं लिखा, पर संभवतः लेखकसे मिल सकेगी।

यशोधरका उपाख्यान हमारे यहां प्रसिद्ध है। उसकी कथा बड़ी मनोहर है। कामसे पीड़ित होकर एक राजमहिषी कहांतक अनर्थ करती है? कहांतक वह अपने चारित्रको कलंकित करती है? इसका चित्र बड़ी सुन्दरतासे खींचा गया है। इसके बाद जीवहिंसासे, न जीवहिंसासे किन्तु आटे आदिके बनाये हुए निर्जीव पशुओंकी संकल्पपूर्वक हिंसासे भी जीवको कितना दुःख भोगना पड़ता है यह बात यशोधरके जीवनकी एक बड़ी घटनाके उल्लेख द्वारा बतलाई गई है। इस पुस्तकके सरस कथाभागको पढ़कर एक वक्त तो कामीसे कामी मनुष्यको भी कामपर घृणा आयगी और निर्दयी पुरुषके हृदयमें करुणाका संचार होगा।

पुस्तकमें प्रसिद्ध चित्रकार धुरन्धरकर्तृक छह चित्र भी दिये गये हैं, जो कि जैन समाजमें एक विल्कुल नई वात है। पुस्तक मराठी भाषामें है। भाषा सरल है। छपाई वगैरह सुन्दर है।

ऐतिहासिकस्त्रियां—हिन्दीमें वावू देवेन्द्रप्रसादजी की लिखी हुई इसी नामकी पुस्तक प्रकाशित हुई है, उसीका यह मराठी अनुवाद श्रीयुत नागेश गणेश नवरने किया है। मराठी भाषा जानने-वालोंके कामकी है। श्राविकाश्रम जुविलीवाग ताड़देव वम्बईके पतेपर चार आनेमें मिलेगी।

वालवोधजैनधर्म—पहला और दूसरा भाग। इसके मूल लेखक वावू दयाचन्दजी वी. ए. हैं। आलोच्य पुस्तक मराठी भाषामें है। श्रीयुत रावजी सखाराम दोसीने मराठी की है। पुस्तक थोड़ेमें जैन-धर्मका साधारण परिचय अच्छा करा देती है। कीमत डेढ़ आना। जैन वुकडिपो शोलापुरसे प्राप्य।

पुत्रीको माताका सिखापन—यह एक गुजराती पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है। मास्तर दीपचन्दजीने इसकी हिन्दी की है। लड़कीका विवाह हो चुकनेपर जव वह अपनी सुसराल जाती है उस समय माताने उसे उपदेश दिया है। वहां किस तरह रहना चाहिए? कैसे उसे अपने सगे सम्वन्धियोंसे वर्ताव करना चाहिये? संतान पालन कैसे करना चाहिए? कैसे अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करनी चाहिए? आदि जितनी उपयोगी और वालिकाके जीवनसे सम्वन्ध रखनेवाली शिक्षाएं हैं वे सव वड़ी उत्तम रीतिसे इसमें दीगई है। पुस्तक वड़ी अच्छी वनी है। गुजराती भाषामें तो थोड़े दिनोंमें इसकी ७००० हजार प्रतियां छपकर प्रकाशित हो चुकीं।

एक जैन महिलाके द्रव्यकी सहायतासे दिगम्बरजैनके सम्पादकने इसे प्रकाशित की है। पुस्तक विना मूल्य विस्तीर्ण की गई है। ऐसे उपयोगी कार्यमें पैसा लगानेवाली महिलाके लिए हम धन्यवाद देते हैं।

जैनसिद्धान्तप्रवेशिका—गुजराती अनुवाद। स्वर्गस्थ बोरसद निवासी मनुभाईके स्मरणार्थ दिगम्बरजैनके ग्राहकोंको विना मूल्य प्रदत्त। इसके हिन्दी लेखक न्या. श्रीयुत पं. गोपालदासजी हैं। इसके द्वारा जैनसिद्धान्तमें बड़ी आसानीसे प्रवेश हो सकता है।

जैनपंचायतीके नियम—झालरापाटनकी पंचायतीने जातिकी भलाईकी इच्छासे कन्याविक्रय आदिके सम्बन्धमें जो नियम बनाए हैं उनका इसमें संग्रह है। समयानुसार नियम अच्छे हैं। और जगहकी पंचायतियोंको भी इसका अनुकरण करना चाहिए। पुस्तक दो आनेमें **श्रीशान्ति—पुस्तकालय झालरापाटनके** पतेसे मिलेगी।

जैनेन्द्रप्रक्रिया—नाथारंगजी ग्रन्थमालाका यह दूसरा ग्रन्थ है। सम्पादक—श्रीलाल शास्त्री और प्रकाशक श्रीयुत पं० पन्नालालजी वाकलीवाल। कीमत पूर्ण पुस्तककी बारह आना है। पर अभी केवल पूर्वार्ध ही छपा है। पुस्तक मिलनेका पता—श्रीस्याद्वाद—रत्नाकर कार्यालय, ठि० मैदागिनी **बनारस** सिटी।

यह व्याकरण ग्रन्थ है। इसके मूल सूत्रके रचयिता प्रसिद्ध वैयाकरणी श्रीमत्पूज्यपाद स्वामी हैं और वृत्ति बनानेवाले श्रीगुण-नन्दि आचार्य। पंडितजीने इसे बड़े परिश्रम और द्रव्य—व्ययसे मासकर प्रकाशित की है। इस प्रक्रियामें एक विशेष बात यह

बतलाई जाती है कि "प्रचलित जो जैनेन्द्रका सूत्रपाठ है वह असली नहीं है। उसमें पाणिनीयके भक्तोंने, यह दिखलानेके लिए, कि जैनेन्द्र पाणिनीयसे कुछ लौटफेर नकल किया गया है, बहुतसा रद्दोबदल कर दिया है, बहुतसे नये वार्तिक भी मिला दिये हैं और सूत्रोंमें भी न्यूनाधिक कर दिया है। और यह प्रक्रिया निर्दोष है। जैसा पूज्यपादस्वामीका मूल सूत्रपाठ है उसीके अनुसार यह बनी है—आदि।"

यद्यपि ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, पर इसके लिए कोई पुष्ट प्रमाण अवश्य ढूंढना चाहिए। हमारी समझसे जैनेन्द्रकी महावृत्तियोंकी प्राचीन पुस्तकें संग्रह की जायें और उनसे इसका मिलान किया जाय फिर जो तथ्य निकले वह प्रकाशित किया जाय तो अच्छा हो। जो हो, इस वक्त जो जैन समाजमें लघुजैनेन्द्रकी कमी थी वह पूर्ण हो गई। इसके द्वारा जैन विद्यार्थी थोड़ेमें बहुत लाभ उठा सकेंगे। जैनपाठशालाओंमें इसीके पढ़ानेकी कोशिश होनी चाहिए।

पं. पन्नालालजी जैन—साहित्य प्रचारके लिए आशातीत परिश्रम कर रहे हैं। वे नये नये ग्रन्थ मुद्रित कराकर जो जैन साहित्यकी कमीको पूर्ण कर रहे हैं उसके लिए जैनसमाज आपका चिर ऋणी रहेगा। पंडितजीका कहना है कि " यदि हमें उपयुक्त सहायता जैन समाज दे तो हम अच्छे अच्छे सब विषयोंके ग्रन्थोंसे थोड़े ही समयमें उसके साहित्यको बहुत कुछ पूर्ण कर सकते हैं।" इसके लिए हम जैन समाजसे प्रार्थना करते हैं कि वह पंडितजीको ऐसे कामके लिए अवश्य सहायता दे। उसे याद रखना चाहिए कि जातिकी निष्कामसेवा करनेवाले पंडितजी सरीखे मनुष्य बहुत कम मिलेंगे।

गृहस्थधर्म—लेखक, श्रीयुत ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, प्रकाशक-जैनमित्र कार्यालय। जैनमित्रके चौदहवें वर्षके उपहारमें वितीर्ण, पृथक् कीमत एक रुपया। मिलनेका पता—जैनमित्र कार्यालय ठि० हीराबाग बम्बई नं. ४.

जैनसमाजमें ऐसी पुस्तककी आवश्यकता थी उसे बहुत अंशोंमें ब्रह्मचारीजीने पूर्ण करदी। महासभाने कितने वक्त ऐसी पुस्तकके लिखे जानेका प्रस्ताव पास किया। पर वह कार्यमें परिणत नहीं हुआ। अस्तु, इसके लिए ब्रह्मचारीजीको धन्यवाद अवश्य देना चाहिए। पुस्तकके लिखनेके लिए ब्रह्मचारीजीने परिश्रम किया है। बहुतसे ग्रन्थोंका उन्हें पर्यालोचन करना पड़ा है। इसे एक तरह संग्रह पुस्तक कहना चाहिए। इसमें जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त जिन जिन क्रियाओंकी गृहस्थको आवश्यकता होती हैं उन सबका उल्लेख किया गया है। पुस्तक सत्ताईस अध्यायोंमें समाप्त हुई है। उसमें—गर्भाधान, प्रीतिक्रिया, सुप्रीतिक्रिया, आदि सोलह संस्कार, विवाह-संस्कार, अजैनको जैन बनानेकी पात्रता, पाक्षिक श्रावककी चर्या, ग्यारह प्रतिमा, विवाहके बादकी क्रिया, गृहिणीका कर्त्तव्य, समाधिमरण, मत्युसम्बन्धि क्रिया, और सूतक आदि विषयोंका क्रमसे न बहुत विस्तृत और न बिल्कुल संक्षिप्त किन्तु आवश्यकताके माफिक विवेचन किया गया है। इसके बाद कुछ फुटकर विषय जैसे—समयकी कदर, जैनधर्म ही सनातनधर्म है, जैन पञ्चायतियोंकी जरूरत, जैनधर्मकी उन्नतिका उपाय, हम क्या खाएं? नित्यपूजन आदि भी दे दिये गये हैं।

पुस्तकके सम्बन्धमें यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि वह अच्छी बनी है। पर हा कहीं कहींपर ब्रह्मचारीजीने शास्त्रके मार्गको छिपाकर रूढ़ि और प्रवृत्तिको प्रधानता दी है। उनका ऐसा करना खटकता है। हमारी समझमें इस पुस्तककी भित्ति ही जब शास्त्रोंको लेकर रची गई है तब जो शास्त्रका मार्ग है वह जहां जैसा था वहां वैसा ही लिखा जाता तो बहुत अच्छा होता। यद्यपि ऐसी जगह बहुत थोड़ी हैं, पर तब भी वे खुलासा उल्लेख करनेके योग्य थीं। क्योंकि ऐसी हालतमें श्रद्धानमें कुछ फर्क आना संभव है। यदि पुस्तकका शास्त्रोंसे कुछ सम्बन्ध न होता तो हमें इस लिखनेकी आवश्यकता भी न थी। पाठकोंको ऐसी बातोंका कुछ दिग्दर्शन भी हम करा देते हैं—

अजैनको जैन बनानेकी जहां पात्रता बतलाई है, उसमें गण-गृहण नामकी क्रिया लिखी है। उसका मतलब ब्रह्मचारीजीने यों लिखा है—"वह भव्य मिथ्यात्वकी अवस्थामें जो अरहंत सिवाय और देवताओंकी मूर्तियोंको, जिनको वह पूजता था, अपने घरसे विदा करे.........इसके बाद "विसृज्यार्चयतः शान्ता देवताः समयोचिताः" इस संस्कृतके वाक्यको और इसके नीचे ही भाषा आदिपुराणके "यह क्रिया जो रागी देवनिकूं अपने घरतें विदा करि वीतराग देवको पधरावे।" इस वाक्यको उद्धृतकर आपने अपनी सम्मति इन शब्दोंमें दी है कि "इससे प्रगट होता है कि, इस दिनसे वह भव्य श्रीजिनेन्द्रकी पूजा करे।"

उक्त संस्कृत वाक्यका भाषाकारने यदि ठीक अर्थ न भी किया था तब भी ब्रह्मचारीजीको तो उसका ठीक अर्थ करना चाहिए था।

उनके सहारेपर ही रहकर शास्त्रकी एक विशेष बातको उन्हें छोड़ना उचित नहीं था। उक्त श्लोकमें शान्त और समयोचित देवताका अर्थ जिनपूजन किया गया है। पर ऐसा मूल ग्रन्थकार जिनसे-नाचार्यका मत नहीं है। उन्होंने खुलासा लिखा है—

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शान्तिहेतवे।
क्रूरास्तु देवतास्त्याज्या यासां स्याद्वृत्तिरामिषैः॥

अर्थात्—विश्वेश्वर आदिक देवता शान्तिके लिए हैं और जिनकी मांसवृत्ति है वे क्रूर देवता त्यागने योग्य हैं। इस श्लोकसे स्पष्ट है कि शान्त और समयोचित देवतासे ग्रन्थकारका मतलब शासन-देवताओंसे हैं। वह जिनेन्द्र भगवानका पूजनादि तो करेगा हीं, पर यहां मतलब उससे नहीं है। यहां तो उन्हें यह वतलाना है कि वह पुरुष पहले जो गृहशान्ति आदिके लिए कुलदेवता नवगृह, आदिका पूजनादि किया करता था उसे छोड़कर उनकी जगह शान्त और समयोचित शासनदेवताका सत्कारादि उसे करना चाहिए। पर ऐसा लिखनेसे शासनदेवताओंका मानना सिद्ध होता और ब्रह्म-चारीजीको ऐसा अभीष्ट नहीं है। जान पड़ता है इसलिए उन्होंने इस प्रकरणको दवा दिया है। अब जो ब्रह्मचारीजीके लिखे अनुसार चलनेवाला होगा वह तो शासन—देवताओंको भी मिथ्या देवता सम-झेगा। क्योंकि उन्होंने तो गणगृहण क्रियामें जिनभगवानका ही पूजन करना लिखा है। पर यदि शासनदेवता सर्वथा ही अमान्य समझे जाँय तो यशस्तिलकके इन श्लोकोंका क्या अर्थ होगा?

देवं जगत्त्रयीनेत्रं व्यन्तराद्यश्च देवताः।
समं पूजाविधानेषु पश्यन्दूरतरं व्रजेत्॥

ताः शासनाधिरक्षार्थं कल्पिताः परमागमे ।
अतो यज्ञांशदानेन माननीयाः सुदृष्टिभिः ॥

इन श्लोकोंसे शासन–देवताओंका मानना स्पष्ट सिद्ध है । जब बड़े बड़े ऋषियोंका यह मत है तब क्यों हम उससे उपेक्षा करें ?

इसके अतिरिक्त जहां सचित्त अचित्तका विचार किया गया है वहां भी प्रवृत्तिको प्रधानता दी गई है । पर यह ठीक नहीं । प्रवृत्तिको अवश्य शास्त्रानुसार सुधारना चाहिए, पर प्रवृत्तिके अनुसार शास्त्र हों यह विपरीत है । इसपर विचार करना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए । पुस्तक अच्छी छपी है । कीमत भी अधिक नहीं है । पाठकोंको अवश्य संग्रह करना चाहिए ।

अधिवेशनोंकी धूम ।

स्याद्वादमहाविद्यालयकाशी–का नवम वार्षिकोत्सव दिसम्बर ता. २५–२६–२७–२८–२९ तक बडे समोरोहके साथ होगा । सभापतिका आसन श्रीयुत महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषण ग्रहण करेंगे । इस अवसरपर और भी बड़े बड़े प्रतिष्ठित विद्वानोंके बुलानेका प्रयत्न किया गया है । इसी समय **भारतजैन-महामण्डलका** वार्षिकाधिवेशन और **श्रीऋषभब्रह्मचर्याश्रमकी** प्रबन्धकारिणिकिमेटीकी बैठक भी होगी ।

जैन अनाथाश्रम देहली–का वार्षिकोत्सव २८–२९ दिसम्बरको होगा। अनाथाश्रमकी शिकायतके हमारे पास बहुतसे पत्र वगैरह आये हैं । हमें पूर्ण आशा है कि उसके कार्यकर्त्ता इस उत्सवपर उसकी जितनी त्रुटियां हैं, उन्हें दूर निकाल फेंकेगे । जिससे कि

समाजके आश्रमके सम्बन्धमें जो गैर खयालात हैं वे निकल जायँ और आश्रमकी उन्नति हो ।

मालवाप्रान्तिकसभा—का अधिवेशन बड़वानी सिद्धक्षेत्रपर आगामी जनवरी ता० ९।१०।११ सन् १९१४ को होना निश्चय हुआ है । मालवाप्रान्तिकसभाको स्थापित हुए आज आठ वर्ष वीत चुके, पर अभीतक उसके द्वारा कोई महत्त्वका काम नहीं हुआ है । अज्ञानसे घिरे हुए मालवप्रान्तके लिए विशेपरूपसे उसे सजग होना चाहिए । कुछ दिनोंसे सभाका आफिस बड़नगरमें आ गया है । महामंत्री श्रीयुत लाला भगवानदासजी हुए हैं । आप अच्छे उत्साही हैं । जैन जातिके उन्नातिकी पवित्र भावना आप सदा किया करते हैं । आपहीके उद्योग और सतत प्रयाससे ब्रह्मचर्याश्रमको इन्दोरसे १७०००) रु० मिले हैं । आशाकी जाती है कि आपके हाथ नीचे सभाका कार्य अच्छी तेजीसे चलेगा ।

बम्बईप्रान्तिकसभाका तेरवां वार्षिकाधिवेशन ता. २९।३० जनवरी और १ फरवरीको इस वर्ष पालिताना सिद्धक्षेत्रपर होना निश्चित हो चुका है । सभापतिका आसन जैनसमाजके गौरवस्तंभ श्रीयुत दानवीर सेठ हुकमीचन्दजीने ग्रहण करना स्वीकार किया है । इस उत्सवपर आनेवाले महाशय गिरनार, आबू आदि पवित्र तीर्थोंकी यात्राका लाभ भी उठा सकेंगे ।

समाजके विद्वानों, नेताओं, व्याख्यानदाताओं, और श्रीमानोंको इन उत्सवोंपर अवश्य जानेकी कृपा करनी चाहिए । जातिकी उन्नातिके उपायोंका ऐसे समयपर बहुत अच्छा प्रचार हो सकता है । आशा है—जातिके शुभचिन्तक इस समयको हाथसे न खोयेंगे ।

न पढ़ेंगे तो पछतायँगे !!

हिन्दी-जैनसाहित्यप्रसारक-कार्यालयकी

ओरसे

एक "जैनसाहित्यासिरीज" नामकी ग्रन्थमाला निकालना आरंभ की गई है। इस सिरीजमें प्रायः जैनसाहित्यके बड़े बड़े उत्तमोत्तम ग्रन्थोंका सार हिन्दीभाषामें लिखा जाकर प्रकाशित हुआ करेगा। जैनसाहित्यका प्रचार करनेके लिए ऐसी ग्रन्थमालाकी जैनसमाजमें बड़ी भारी कमी थी, जिसे उक्त कार्यालय अपनी सिरीज द्वारा बहुत अंशोंमें पूर्ण कर सकेगा।

सिरीजका पहला ग्रन्थ उभय-भाषा-कविचक्रवर्ति मल्लिषेणसूरिका बनाया नागकुमारचरित छप रहा है। लगभग पंद्रह दिनमें तैयार होकर प्रकाशित हो जायगा। यह चरित कितना सुन्दर और रसीला है इसका अनुमान पाठक पढ़कर ही कर सकेंगे।

सिरीजका दूसरा ग्रन्थ वादिराजसूरिकृत अत्यन्त सुन्दर संस्कृत यशोधरचरित हिन्दीमें प्रकाशित किया जायगा। यह ग्रंथ भी तैयार हो रहा है। सीरीजका तीसरा और चौथा ग्रंथ सम्यक्त्वकौमुदी और भक्तामरकथासार मंत्रसहित प्रकाशित होगा।

इसके बाद यशस्तिलक, गद्यचिन्तामणि, धर्मशर्माभ्युदय, चन्द्रप्रभकाव्य, जीवन्धरचम्पू, पार्श्वनाथकाव्य, भरताभ्युदय, पार्श्वाभ्युदय, प्रद्युम्नकाव्य आदि जैनसाहित्यके उत्तमोत्तम ग्रन्थोंका हिन्दीभाषामें सार प्रकाशित किया जायगा। उक्त काव्योंमें क्या लिखा है? उनका कथा माधुर्य कैसा है? यह आनन्द अभीतक संस्कृतके जानकार विद्वान ही लेते थे, पर उनके मधुर और सरस कथा सुधाके

पान करनेका सौभाग्य सर्व साधारणको भी प्राप्त हो, वे भी कविके असली भावोंका अनुभव कर सकें, इस लिए उक्त सिरीजकी योजना की गई है। आशा है—जैनसमाज अपने गौरवको उन्नत और प्रतिष्ठित करनेके लिए इस सिरीजके प्रचारमें सहायक बनेगा।

नागकुमारचरितकी वैसे कीमत लगभग छह आने रहेगी, पर जो सज्जन सिरीजके स्थायी ग्राहक बनकर आठ आने पहले जमा करा देंगे अथवा पहले ग्रन्थकी वी. पी. आठ आने ज्यादा देकर मँगायेंगे उन्हें सिरीजके सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाया करेंगे। ग्राहकोंके ये आठ आने डिपाजिट तौरपर जमा रहेंगे, जब वे अपना नाम सिरीजकी ग्राहक श्रेणिमेंसे निकलवा लेंगे उस वक्त वे वापिस लौटा दिये जायँगे।

आशा है—हमारी यह योजना ग्राहकोंको पसन्द होगी। उन्हें बड़ा भारी लाभ यह होगा कि उनके पैसेके पैसे भी वापिस मिल जायँगे और प्रत्येक ग्रन्थ पौनी कीमत अर्थात् एक रुपयेकी कीमतका ग्रन्थ बारह आनेमें उन्हें मिला करेगा।

सिरीजका ग्रन्थ कब निकला करेगा इसका कोई नियम नहीं। जब पुस्तक छपकर तैयार हो जाया करेगी तब वह सब ग्राहकोंके पास वी. पी. द्वारा भेज दी जायगी। ग्राहकोंका फर्ज होगा कि वे वी. पी. छुड़ा लें। उनके न छुड़ानेपर जो वी. पी. का खर्च पड़ेगा, वह डिपाजिटमेंसे काटकर बाकीके पैसे उनके पास भेज दिये जायँगे।

ग्राहक होने तथा पुस्तकें मँगानेको पत्र नीचे पतेपर दीजिए—

उदयलाल काशलीवाल

मैनेजर—हिन्दी—जैनसाहित्यप्रसारक, कार्यालय

चन्दाबाड़ी, गिरगांव—बम्बई

पवित्र, असली २० वर्षकी आजमूदा, सैकड़ों प्रशंसापत्र पास,
प्रसिद्ध हाजमेकी, अक्सीर दवा,
फायदा न करे तो दाम वापिस।

यह नमक सुलेमानी पेटके सब रोगोंको नाश करके पाचनशक्तिको बढ़ाता है। इससे भूख अच्छी तरह लगती है, भोजन पचता है और दस्त साफ होता है। आरोग्यतामें इसके सेवनसे मनुष्य बहुतसे रोगोंसे बचा रहता है। इसके सेवनसे हैजा, प्रमेह, अपच, पेटका दर्द, वायुशूल, संग्रहणी, अतिसार, बवासीर, कब्ज, खट्टीडकार, छातीकाजलन, बहुमूत्र, गठिया, खाज, खुजली आदि रोगोंमें तुरन्त लाभ होता है। बिच्छू, भिड़, बरोंके काटनेकी जगह इसके मलनेसे लाभ होता है। स्त्रियोंकी मासिक खराबीको यह दुरुस्ती करता है। बच्चोंके अपच दस्त होना, दूध डालना आदि सब रोगोंको दूर करता है। इससे उदरी जलोदर, कोष्टवृद्धि, यकृत्, प्लीहा, मन्दाग्नि, अम्लशूल और पित्तप्रकृति आदि सब रोग भी आराम होते हैं। अतः यह कई रोगोंकी एक दवा सब गृहस्थोंको अवश्य पास रखनी चाहिये। व्यवस्था पत्र साथ है। कीमत फी शीशी बड़ी ॥) आठ आना। तीन शी० १।-) छह शी० २॥) एक दर्जन ५) डांकखर्च अलग।

दद्रुदमन—दादकी अक्सीर दवा। फी डिब्बी।) आना।

दन्तकुसुमाकर—दांतोंकी रामवाण दवा। फी डिब्बी।) आना।

नोट—हमारे यहां सब रोगोंकी तत्काल गुण दिखानेवाली दवाएं तैयार रहती है। विशेष हाल जाननेको बड़ी सूची मंगा देखें।

मिलनेका पताः—चंद्रसेन जैनवैद्य-इटावा।

विज्ञापन छपवाई और बँटवाईके नियम।

---

(१)

	एक बार	तीन मास	छह मास	एक वर्ष
एक पृष्ठ	४) रु.	९) रु.	१५) रु.	२४) रु.
आध. पृष्ठ	२॥) रु.	५) रु.	८) रु.	१३) रु.

(२) बँटवाई १ तोलेतकको ४) रु.
१ तोलेसे ऊपर ३॥ तोलेतकको १०) रु.

(३) आधे पृष्ठसे कम विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

(४) विज्ञापनकी छपवाई और बँटवाईका रुपया पेशगी भेजना चाहिये। उपर लिखित भावमें कुछ भी कम नहीं होगा।

(५) विशेषके लिये पत्रव्यवहार करो।

सूचना।

आगामी अंकसे एक सुन्दर सामाजिक उपन्यास भी दिया जावेगा।

सत्यवादी कार्यालय.
ठि० चन्दावाड़ी, पो० गिरगांव,
बम्बई.

प्रार्थना ।

हम सब भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि, वे अपने २ गांवके सब तरहके पञ्चायती समाचारोंके भेजनेकी कृपा करें। हम उन्हें सहर्ष छापेंगे। हमारे इस पत्रका यह खास उद्देश्य है कि, इसमें जाति सम्बन्धी हर प्रकारके झगड़े प्रकाशित किये जा कर और उनसे होनेवाली जातिकी हालत दिखलाकर उनके मिटानेका उपाय किया जाय। हमारी जातिके अधःपतनके कारण ये झगड़े भी हैं। जबतक ये घरेलू झगड़े नष्ट न होंगे तबतक जातिकी उन्नति होना कष्ट साध्य ही नहीं किन्तु असंभव है। आशा है कि पाठक हमारी इस प्रार्थनापर ध्यान देंगे।

दूसरी प्रार्थना ।

इस पहले अंकके साथ २ आपकी सेवामें छपा हुआ कार्ड भेजा जाता है। यदि आप ग्राहक होना चाहें तो कृपा करके थोड़ी सी तकलीफ उठावें और कार्डपर अपना ठीक २ पता लिख कर भेज दें, जिससे जातिका पैसा फिजूल नष्ट न हो। हम प्रार्थना करते हैं कि, इस जातीय काममें आप सहायक होंगे।

आपका दास—

उदयलाल काशलीवाल।